देश की वर्तमान विघटनात्मक परिस्थिति में वैदिक आदर्शों की उपयोगिता

सम्प्रति साधारणतया समस्त विश्व और विशेषकर भारत भयावह परिस्थिति के वक्र चक्र में पड़कर उत्तरोत्तर पतन के गहरे गर्त में गिरता जा रहा है। मानवता नाम की वस्तु केवल मिथ्या उद्घोषों की कर्णकटु ध्वनिमात्र में ही अविशिष्ट रह गई है। यों तो चक्रलोक में वसने के सुनहरे स्वप्न देखे जा रहे हैं परन्तु वस्तुत: भूमण्डल की परिधि में भी बसते हुए राहत की सांस ले सकना दूभर हो रहा है। वस्तुत: देश की विघटनात्मक परिस्थिति का प्रमुख कारण स्वार्थसिद्धि के लोभ से मर्यादाहीनता की अति है। ऐसी परिस्थिति में वैदिक आदर्शों का अनुसरण ही एक मात्र आशा की किरण है जो कि सही मार्ग का प्रदर्शन करा सकती है।

वैदिक वाङ्मय में विश्वधर्म से लेकर व्यक्ति धर्म तक, समष्टि से व्यष्टि तक सभी धर्मों का निरूपण है। यजुर्वेद में राष्ट्रधर्म का सांगोपांग और स्पष्ट वर्णन है.

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आ राष्ट्रे राजन्य: शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।
द्रोन्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशु: सप्ति: पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठा:
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे न:पर्जन्यो वर्षतु।
फलवत्यो न ओषधय: पच्यन्ताम्।
योग क्षेमो न: कल्पताम्॥

भाव यह है कि विश्वमावन ब्राह्मण ब्रह्मतेज से सम्पन्न हों। राष्ट्र में क्षत्रिय गण शूरवीर धनुर्धर, रोग्ययुक्त और महारथी हों गायें दुधारू, बैल भारवाहन मे सक्षम अश्व शीघ्र गामी, स्त्रियाँ शोभामयी, रथी विजयशील हों और इस यजमान का युवा पुत्र निर्भय वीर हो, आवश्यकतानुसार वर्षा हो, वनस्पतियां फलवती हों हमारा योगक्षेम हो। अथर्ववेद में भी राष्ट्रोन्नति के उपाय बताए गये हैं जो उपर्युक्त मंत्र के तारतम्य में हैं अथवा अधिपूरक रूप में हैं।

राष्ट्र भावना के मूलाधार हैं - एक देश संस्कृति (भावना की एकता) एक सभ्यता (ऐतिहासिक एकता) और एक भाषा (अभिव्याप्ति की एकता)। वेदों मे इसका सविस्तार वर्णन मिलता है।[२] यदि संक्षेप मे कहा जाए तो देश और राज्य के संगठनात्मक ऐक्य का नाम राष्ट्र है।[३] राष्ट्र देश की समग्रता, भावानात्मक संगठन और राजनीतिक एकता का द्योतक है- यह इस तथ्य से प्रकट होता है कि ऋग्वेद में सामाजिक संगठन ही पांच क्रमिक विकास भूमियां बताई गई हैं। इसकी मूलभूत इकाई 'कुल' कहलाती है जो 'कुलष के संरक्षण में एक गृह के सदस्यों के अनुशासनबद्ध संगठन का नाम है[४]। कुलों का समूह 'ग्राम' कहलाता है।[५] यह 'ग्रामीण' के नेतृत्व में काम करता है। ग्राम से बढ़कर विश् नामकसमूह होता है जिसका मुखिया विशपति 'कहा जाता है।[६] जैसे आजकल कई गावों की एक पंचायत होती है जिसका प्रधान सरपंच होता है। वैसे ही पहले विश रहे होंगे। विश से वृहत्तर समूह 'जन' कहलाता है।[७] जन राजा के शासन मंत्र से सीधा सम्बन्ध रखता होगा क्योंकि राजा को 'जनरक्षक' कहा गया है।[८]

राष्ट्र से भी वृहत्तर 'साम्राज्य होता है इसके शासक को क्रमिक उच्चता के अनुसार अधिराज राजधिराज, एकराट्, सम्राट, स्वराट्, विराट् और सर्वराट् कहा जाता है।[९] आज भी शासन व्यवस्था सुचारु रूप से चले-एक सरपंच से लेकर राष्ट्रपति तक अनेक पदाधिकारी हैं जो विभागीय अधिकारी कहे जाते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण में तत्कालीन शासन पद्धति के भी उल्लेख हैं।[१०] 'भोज्य' एक विशिष्ट प्रसार का गणराज्य था।[११] 'स्वराज्य' राष्ट्रपति की प्राधानतावाला गणराज्य था। स्वराज्य के अतिरिक्त वैराज्य गणतंत्र होता था[१२] जहां किसी व्यक्ति विशेष में ही शासन की प्रमुखता रहती थी उसे राज्य कहते थे जैसे आज राज्यपाल होता है। अनेक राज्यों को अधीन रखनेवाला शासन का नाम सम्राज्य था जैसे आज केन्द्र शासन है।

अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र भावना में भौगोलिक एकता का विचार प्रमुख था। राजा भूमि की रक्षा करते रहने की पवित्र शपथ इन शब्दों में लेता था कि 'पृथ्वी माता तुम मेरी हिंसा मत करो और मै तुम्हारी न करूं।' भाव यह है कि देश और राजा परस्पर इस प्रकार हितैषी हों जैसे माता पुत्र[१३] किन्तु देश एक भावात्मक सत्ता भी है और इस शब्द से जितना भौगोलिक सीमा का बोध होता है उतना ही या प्रसंगानुसार उससे भी अधिक प्रजा का कथन होता है। इसलिए कहा गया है कि प्रजा ही 'राष्ट्र' है।[१४] राष्ट्र के विचार में प्रजा का विचार ही सब कुछ है। प्रजा की समृद्धि ही राष्ट्र का वास्तविक राष्ट्रत्व है।[१५] जब प्रजाहित ही राष्ट्र का सर्वस्व है तब प्रजा को ही अपना हित रखने का वास्तविक अधिकार है। अत: वेदों ने राष्ट्र की प्रभु सत्ता प्रजा में रखी है और आज भी जनता मे ही प्रभुसत्ता है। वैदिक विचारधारा मे राजा की विशेषता उसके धर्म संस्थापक के रूप में है वह तो शासन का वह रूप है जो धर्म की संस्थापना और रक्षा करता है। उससे यह निष्कर्ष नहीं था उसमें मंत्रों द्वारा दैवी गुणों का आध्यारोप किया जाता था। तात्पर्य

यह है कि प्रजा की इच्छा या आज्ञा में ही राजा को शासनाधिकार दिया जाता था।[१६] राजा को राज्य एक निक्षेप की तरह सौंपा जाता था स्वोपभोग के लिए नहीं अपितु कृषिवृद्धिऔर सर्व विध पोषण द्वारा प्रजा के क्षेम संपादन के लिए।[१७] इससे सिद्ध है कि राजपद पर आसीन रहने की कसौटी जनता या योगक्षेम संपादन था और राजा एक महाधिनिधि' (ट्रस्टी) मात्र था। राजा का अभिषेक संस्कार भी यही प्रकट करता है। इनका ही नहीं राजा को निरंकुशता के पथ पर जाने से रोकने के लिए और उसपर नियंत्रण रखने के लिए प्रजा की कार्यविधियां थीं निर्वाचन समिति, मंत्रि परिषद की अधिकार सम्पन्नता और सभासमितियों का अंकुश था। उससे स्पष्ट है कि राजा की स्थिति प्रजा पर निर्भर थी[१८] क्योंकि प्रजा ही राजा को चुनती थी[१९] और उसे उस पद पर बनाये रखती थी[२०] ये उस पद से पदच्युत कर सकती थी[२१] और उसे पुन: सिंहासनारूढ कर सकती थी[२२] निरन्तर उसे शक्ति देती थी और सब तरह से उसकी रक्षा करती थी।[२३] अत: राजा का यह प्रमुख कर्तव्य था कि वह प्रजा को प्रसन्न रखे[२४] जिससे प्रजा उसे चाहती रहे।[२५]

राजा प्रजा का सेवक है,[२६] यह स्पष्ट करने के लिए अभिषेक के समय एक विशेष धार्मिक कृत्य होता था - 'अंध्वर्यु और उसके सहकारी राजा की पीठ पर दण्ड स्पर्श करते थे जिसका अभिप्राय यह होता था कि यद्यपि प्रजा राजा को अदण्ड्य बना रही है तथापि दण्ड शक्ति की मूल अधिष्ठात्री प्रजा ही है।[२७] राजा दण्ड था धारण करने वाला मात्र है,[२८] दण्ड का विधाता या मूल स्रोत नहीं। यद्यपि प्रभुसत्ता प्रजा मे निहित थी तथापि दण्ड शक्ति राजा को देकर और उसे अदम्य बनाकर[२९] प्रजा स्वेच्छा से राजा की आज्ञा पालन करने का व्रत लेती थी।[३०] समष्टि प्रजा प्रभुता सम्पन्न थी और व्यष्टि प्रजा वशवर्तिनी थी। अत: स्पष्ट है कि राजा और प्रजा के परस्पर अधीन रहने से ही राष्ट्र उन्नति शील, निर्दन्द्र और व्यवस्थित रहता है।[३१] राष्ट्र की रक्षा और समृद्धि के लिए प्रजा राजा को बलि (कर) दिया करती थी।[३२] वलिहृत[३३] होकर राजा न्याय की व्यवस्था करता था और व्यवहार (कानून) सम्बन्धी कार्यों में वही अन्तिम घनीध्यक्ष (न्यायाधीश) होता था।[३४] इस प्रकार अन्तरिक व्यवस्था और सुरक्षा का प्रबन्ध करके वह बाह्य शत्रुओं से भी प्रजा की रक्षा करता था। इसीलिए वह प्रजारक्षक कहलाता था।[३५] अथर्ववेद[३६] में राजा को रक्षकों अर्थात् क्षत्रियों में श्रेष्ठ, प्रजा का अधिपति, कोष का एक मात्र स्वामी, जन का अप्रतिम नेता, समस्त प्राणियों का प्रभु, मनुष्यों मे सर्व श्रेष्ठ और देवों के समकक्ष कहा गया है। कर द्वारा धन की प्रचुरता हो जाने से राजा भव्यता भी धारण कर लेता था। उसका वेष भव्य होता था,[३७] उसका सभाभवन सहस्त्र स्तम्भ वाला[३८] और राजप्रसाद सहस्त्रद्वार वाला[३९] होंता था। उसके अनेक परिकर रहते थे जैसे आज राष्ट्रपति के हैं।

राजा को इतनी सुविधा, इतनी प्रभुता और इतने अधिकार प्रदान करने पर भी उससे संयमी ब्रह्मचारी और तपोमय होने की अपेक्षा की गई है[४०] क्योंकि जागरुक व्यक्ति ही जनता की रक्षा कर सकता है[४१] और समझदार बुद्धिमान नेता ही जनता को सही मार्ग से उन्नति पथ पर ले जाता है।[४२] ऐसा राजा ही गर्व पूर्वक कह सकता है कि मेरा राज्य चोरों, कायरों शराबियों, यज्ञहीनों, अविद्वानों और चरित्र भ्रष्टों से रहित है।[४३]

पराक्रमी और तेजस्वी होने के लिए सहायकों की आवश्यकता होती है।[४४] राजा को भी अपने कार्यों में साथ देने वाले व्यक्ति की अपेक्षा होती है। संगठित और बलशाली होने पर ही राष्ट्र या व्यक्ति अनाधृष्ट रह सकता है।[४५] देश रक्षार्थ युद्ध करना होता है और युद्ध में क्रूर कर्म भी होते हैं।[४६] शत्रु के साथ 'शठे शाठ्यम' थी नीति अपनानी होती है और हिंसा का मार्ग भी ग्रहण करना होता है।[४७]

सन्दर्भ :-

१. जयुर्वेद २२ /२२
२. हिन्दू सभ्यता-श्री राधा कुमुद मुखर्जी अध्याय ३.४.
३. ऋग्वेद - ४/४२/१
४. वही - १०/१७९/९
५. वही - १/४४/१०,३/३३/११,१०/१०७/५
६. वही - १/३७/८
७. वही - २/२६/३, १०/८४/२, १०/९१/२
८. वही - ३/४३/५ 'गोप्ता जनस्य'
९. अथर्व - ३/१/४, ऐत.ब्रा. ८/१५, गोपथ ब्रा. आपस्तम्ब श्रौत सूत्र २०/१/१
१०. ऐत.ब्रा. ८/३
११. तै. ब्रा. १/३/२२ 'ए एवं विद्वान् बाजपेयने यजति। गच्छति स्वराज्यम्। अग्रसमानानां पर्येति। तिष्ठन्तेऽस्मैज्येष्ठाय॥
१२.महा. १॥.प. ५८/५४. वैराज्य का अर्थ सुशोभित होनां मान नही है। विराट् का अर्थ राजा है -'राजा भोजो विराट् सम्राट्।'
१३. वृत.ब्रा. ५/४/३/२० और टीका
१४. ऐत.ब्रा. ८/२६ - राष्ट्राणि वै विश:॥
१५. शत. ब्रा. ६/७/३/७ - श्रीवै राष्ट्रम्
१६. वही ५/३/३/२-९
१७. वही ५/२/१- इयं ते राट .... यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि वरूण:। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रश्यै त्वा पोषाय॥
१८. यजु. २०/९ - विशि राजा प्रतिष्ठित:
१९. अकरर्व. २/४/२,६/८७.८८ त्वां विशो वृणतां राज्याय॥
२०. वही ६/८८/३
२१. वही ३/४/२., ३/३, ३/३/४, ३/८/२, ८/१०

तैति. २/३/१, वाजसनेचि अध्याय १९-२१, रा.ब्रा. १२/९/३ पंचविशं ब्रा. १९/७/१-४

२२- व्रत. ब्रा. ४/३/३/६ विशा वा क्षत्रियो बलवान भवति

२३- वही. ५/३/३/१२, ५/४/२/३ अथर्व. ७/३४, १/२९. १/३०

२४. अथर्व. ६/७३, ८/९४

२५. अथर्व. ४/८/१४, यजु. १२/११, ऋ १०/१७१/१ विशस्त्वा सर्वं वाञ्छन्तु

२६. साकेत - मैथिली शरण गुप्त

२७. शत.ब्रा.५/४/४/७ -दण्डैर्हनन्ति.... एवं दण्डवधमतिनयन्ति ॥

२८. ऋग्वेद ४/४७/११

२९. वही ४/४/३

३०. यजु. १८/२९ - प्रजापते प्रजा अभूम।

३१. शत. ब्रा. राष्ट्रमेव विश्या हन्ति तस्माद् राष्ट्री विशं धातुकः। विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद् राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति ॥

३२. ऋग्वेद १/६४/४, ७/६/५.

३३. वही. ७/६/५, १०/१७३/६

३४. वही १/२५/१३

३५. वही पायुर्विशः ॥

३६. अथर्व ४/२२, यजु. १२/२२ क्षत्राणां राजेन्द्र-विशां विश्यति.... धनपति घनानाम्- हवं वृद्यं जनानाम् .... कृष विश्वस्य भूतस्य.... उत्तमं यानवानाम् ....

३७. ऋग्वेद. १/८५/८ ल्बेबसदृशं ॥

३८. वही. २/४१/५ - सहस्र स्थूणसद से ॥

३९. वही ७/८६/५ - सहस्रद्वारं गृहम् ॥

४०.अथर्व. ११/५/१७ ब्रह्मन्चर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ॥

४१. साम. ३/१/७ - जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृवि. ॥

४२. ऋग्वे. ५/४६/१ - विद्वान् पथः पुर एता ऋजुनेषति ॥

४३. छान्दो. ५/११/५- म मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः। नाना हितग्निनांविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः

४४. शत. ब्रा. ३/७/३/८ - द्वितीयवानहि वीर्यवान् ॥

४५. यजु. १०/४ - अनाधृष्टा सीदत सहौजसः ॥

४६.शत. १/२/५/१९ - सग्रामो वै क्रुरम्। संग्रामे हि क्रुरं क्रियते॥

४७. यजु. ११/८० - धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति ॥

(क्रमशः)

- डॉ.एस.जे.दिवाकर
इन्दिरा कालोनी (जे.ए.मार्शल) माला रोड,
कोटा नं. ३२४००२ (राज.)

देश की वर्तमान विघटनात्मक परिस्थिति में वैदिक आदर्शों की उपयोगिता

(गतांक से आगे)

वस्तुत: राजनीति राज्य की वह नीति है जिसके अनुसार प्रजा का शासन, पालन और अन्य राज्यों से व्यवहार होता है। प्रजा को धारण करने वाली नीति ही राजनीति और राजनीति ही धर्म है। राजा या शासक वही है, जो प्रजा का पालन करे। राष्ट्र का यथार्थ रीति से परिचालन करने के लिए राजनीति के सूत्रधार राष्ट्रपति को ही सर्वप्रथम धर्म का आभय ग्रहण करना चाहिए क्योंकि शासक का आचार-विचार व्यवहार ही जनता के लिए अनुकरणीय होता है और व्यवस्था ही जनता के लिए शिरोधार्य होती है।

राजनीति का अर्थनीति से गहरा सम्बन्ध है। राज्यरक्षा के लिए अर्थ-संग्रह की आवश्यकता होती है, उसमें कोई सन्देह नहीं। इसी उद्धेश्य से प्रजा से राजा के राजस्व ग्रहण करने की व्यवस्था होती है परन्तु प्रजा कहीं कर भार से पीड़ित न हो उस पर विशेष ध्यान देकर ही कर की मात्रा निर्धारित करनी चाहिए। करग्रहण करने में राजा को 'मालाकारवृत्ति' का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् जिस प्रकार माली वृक्ष को पीड़ित या विनष्ट न करके कर ग्रहण करे। 'अंगारकवृत्ति' का अवलम्बन करना शासक को उचित नहीं। अर्थात् जैसे कोयला तैयार करने के लिए वृक्ष को काटकर और ध्वंस करके काष्ट- संग्रह किया जाता है, शासक को प्रजा से उस प्रकार कर संग्रह करना ठीक नहीं। आज जनता से कर-ग्रहण करने के लिए 'अंगारवृत्ति' का ही अवलम्बन किया जा रहा है जिससे जनता में त्राहि मची हुई है।

दण्ड विधान भी राजनिति का एक पक्ष है। दण्डविधान के निमित्तनीति कानून तैयार करना भी आवश्यकता है। कानून निर्माण भी पहले धर्मानुसार था। 'बृहस्पति और शुक्रनीतियां' उस विषय में प्रमाण हैं। इनमें धिग-दण्ड, अर्थ-दण्ड, कायदण्ड तथा 'प्राणदण्ड' आदि की व्यवस्था है। निर्णय करते समय इस बात पर ध्यान दिया जाता था कि कही निर्दोष व्यक्ति किसी तरह भी दण्डित न हो जाए और दोषी प्रमाणित होने पर राजा अपने पुत्र को भी दण्ड देने में आपत्ति नहीं करता था। आज राजनीति से धर्म का सम्बन्ध तोड़ दिया गया है, इसीलिए दण्ड भी बिडम्बना हो रही है। दण्ड दिये जाते हैं और अपराधों तथा अपराधियों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

आज विश्व की राजनीति से धर्म का समावेश उठ गया है। यही कारण है कि सर्वत्र विघटनकारी तत्वो का प्रादुर्भाव हो रहा है द्वेष, वैमनस्य, भ्रष्टाचार, अनाचार, अत्याचार, व्यभिचार, दम्भ प्रवंचना, असत्य और हिंसा का विकराल आधिपत्य बढ़ रहा है।

समिती और सभा

राजा को जनहित के कार्यों में लगाये रखने के लिए और

उसमे तानाशाही की प्रवृत्ति उत्पन्न होने से रोकने के लिए वैदिक वाङ्;मय में समिति और सभा की व्यवस्था है।[४४] इनके द्वारा जनता की इच्छा राजा के साथ होती थी। वस्तुत: में जन संसदे थी। ये भारतीय राजमंत्र की मूलभूत आरंभिक संस्थाएं थी। अत: इन्हें प्रजापति की दो पुत्रियां कहा गया है।[४६]

समिति -

समिति पूरे राष्ट्र की संस्था का नाम है जैसे आज संसद है। उसमे देश की जनता के प्रतिनिधि एकत्र होकर राजा का निर्वाचन करते हैं जैसे आज राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है। ये कभी-कभी निर्वाचित राजा को वापस बुलाकर उसका पुनर्निर्वाचन करते थे। समिति विचार करके राजा के अच्छे कार्यों का समर्थन और बुरे कार्यों से

उसे विरत करती थी।[५०] शत्रु विजयार्थ एवं शक्ति दृढकरणार्थ राजा, समिति का समर्थन प्राप्त करता था।[५१] राज्य के लिए समिती का प्रिय बनना आवश्यक है।[५२] राजा के लिये समिती में उपस्थित हो[५३] और सदस्यों के मन्तव्य को अपने अनुकूल बनाये।[५४] राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिए राजा और समिति के मन, चित्त, प्रयत्न और हृदय समान होने चाहिए[५५] अर्थात् उनमें पूर्ण सौमनस्य होना चाहिए। आज भी संसद का सत्र प्रारंभ होने पर राष्ट्रपति का भाषण होता है और भाषण अनुकूल न होने पर सदस्य ब्रहिर्गमन कर जाते हैं। समिति मे अध्यात्म चर्चा और साहित्य चर्चा भी हो जाती थी।[५६]आज संसद में कदाचित् ही इन विषयों पर चर्चा होती हो।

सभा

सभा राष्ट्र के वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध नागरिकों के समूह का नाम है जैसे आज की राज्य सभा। सभा के सदस्य सभ्य, सभासद[५७] सभासीन या सभेय कहलाते हैं सभा का प्रमुख सभापति[५८]और सभा का रक्षा पुरुष सभापाल कहलाता है।[५९] सभा के लिए धन का पृथक अनुदान होता था।[६०] सभा में किसी भी प्रवृत्त पर स्वतंत्रतापूर्वक खुलकर विचार हो सकता था। एक बार कोई भी निर्णय हो जाने पर वह सबके लिए अनुल्लंघनीय हो जाता था।[६१] इसीलिए स्वच्छ न्दता या उच्छृंखलता का परित्याग करने के लिए कहा जाता था।[६२] इसलिए युवकों को सभा के योग्य बनने का आदेश दिया गया है।

पहले ऋषिगण भी राजा से सभा में ही मिला करते थे[६३] और राजा भी सभा मे ही एकत्र होते थे।[६४] सभाका महत्व इतना अधिक था कि कोई राजा तो क्या, प्रजापति भी सभा के बिनाअपना कार्य नही चला सकते।[६५]

सभा के कार्यो में सामूहिक निर्णय और न्याय प्रमुख था। गंभीर विषयों पर विचार विनियम होते थे। सदस्य अपने मन्तव्य के प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने के लिए वाक् शक्ति बढ़ाते थे। वे वाग्मिता बढ़ाने[६६] और सुन्दर भाषण करने की योग्यता प्राप्त करने के लिए[६७] भगवान से कामना करते थे। प्रत्येक सभासद चाहता था कि वह अन्य सदस्यों के वर्चस् और विज्ञान तेज और बुद्धि को अपने पक्ष मे मोड़ सके और उनके मन को अपने भाषणों में रमा सके[६८]जिससे वे उसका समर्थन करें।[६९] भाषण में त्रुटि रहना बड़ा अपराध माना जाता था और ऐसे भाषणदाता का अपमान होता था।[७०]

आज संसद में आये दिन मर्यादा का उल्लंघन हो रहा है। संसद की गरीमा बनाये रखने के लिए सदस्यों को बार-बार अगाह करना पड़ता है। विषय प्रस्तुत करने की क्षमता और उस विचार-विनिमय करना तो माखौल बन गया है क्योंकि विपक्ष उस पर ध्यान नही देता है। पक्ष की बात सुनने से पहले ही विपक्ष बर्हिगमन कर जाता है। अध्यक्ष को व्यवस्था बनाये रखने के लिए कितनी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है उसे प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।

सभा उच्च न्यायालय का भी कार्य करती थी। यद्यपि न्याय या व्यवहार सम्बन्धी कार्यों मे राजा ही सर्वोच्च होता था[७१] तथापि वह यह कार्य सभा की सहायता से ही करता था। पारस्कर गृह्यसूत्र में सभा के गुण नाम 'नादि' और 'त्विषि' भी बताये गये हैं' जिनके अर्थ जयरामी व्याख्या के अनुसार 'नदनशील' और 'दीपनशील' हैं क्योंकि सभा में धर्मनिरूपण होता था।[७२] दिव्य परीक्षा करने के लिए सभा में अग्नि रखी जाती थी। इसीलिए सभा को प्रकाशवती कहा गया है। सभा में निर्णयार्थ आने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह 'समाचार' कहलाते थे।[७३] सभा अपराधी को दण्ड देती थी और निरपराध को दोषविनिर्युक्त प्रकट करती थी।[७४]

सभा के अतिरिक्त न्याय के अन्य साधन भी वेद और वैदिक वाङ्:मय में उल्लेखित हैं। झगडों में पंचनिर्णय भी होता था। ऐसे बीच-बचाव करने वाले 'मध्यमशी' कहे जाते थे।[७५] ग्रामों मे न्यायकर्ता पंच होते थे। पंच का नाम ग्राम्यवादिन भी है।[७६] इनकी भी सभा हुआ करती थी।[७७]

न्याय कार्य मे सहायता करने के लिए आरक्षी विभाग होता था। रक्षा पुरूष या दण्डघर को 'उग्र'[७८] और 'जीवगम्'[७९] अर्थात् दुर्वान्त और जीवित पकड़ने वाला कहते थे।

आज स्थिति यह है कि आरक्षी हीं भक्षी हो रहे हैं। सुरक्षा और रक्षा करने वाले ही जनता का शोषण कर रहे हैं। मंत्रिपरिषद वैदिककाल में शासन कार्य में राजा को सहायता देने के लिए मंत्री होते थे। राजा इनपर आश्रित रहता था, इनसे पथ प्रदर्शन प्राप्त करता था, अत: इन्हें 'रालिन' कहा गया है।[८०] ये राजकर्ता और 'राजकृत[८१] होते थे अर्थात् ये स्वयं राजा न होते हुए भी राज्य करने वाले होते थे। ये ही राजा के सिंहासनरुढ होने पर इसकी प्रभुता और कर्तव्यमत्ता की घोषणा करते थे।[८२] ये शासन के समस्त मुख्य कार्यों के संचालक होते थे और शासकीय विभागों के अधिपति हुआ करते थे।[८३] राजा इनकी सम्मति से ही कार्य करता था। सभासद बने रहने के लिए इनकी अनुकूलता रखना राजा के लिए आवश्यक होता था, अत: 'रत्न-हवि' नामक अष्टि से राजा इन्हें प्रसन्न रखता था।

आज भारतीय जनतंत्र में राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद की वही स्थिति है लेकिन मंत्रिपरिषद की अक्षमता और राष्ट्रपति के साथ वास्तविक समन्वय के अभाव में देश में विघटन कारी परिस्थितियां पैदा हो रही हैं।

इन राजकर्ताओं में सर्वप्रथम गणना ब्राह्मण की थी। ब्राह्मण पुरोहित के रुप में राजा और राज घराने से सम्बन्ध रखता था। वह

न केवल सन्मित्र के रुप में नित्य साहचर्य के द्वारा राजपरिवार को कर्तव्याभिमुख रखता था अपितु युद्ध में भी राजा के साथ रहकर उसके लिए दैवी सहायता की योजना भी बनाता था। ब्राह्मण राजा के लिए उपदेशक, राजपुत्रों और प्रजा के लिए शिक्षक, विचार क्षेत्र में ऋषि समाज के लिए पथ प्रदर्शक और योद्धाओं के लिए अग्रगामी होता था। वैदिक मत से वह राष्ट्रजीवन के प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में जागरूक रहकर आगे रहता था [८५] इसीलिए वह पुरोधा या पुरोहित कहलाता था। [८६] आज भी यदि राष्ट्रपति के सलाहकार उनका सही प्रदर्शन करें और राष्ट्रजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जागरुक रहकर सही सलाह दें तो कदाचित् वर्तमान विघटनकारी परिस्थिति से बचा जा सकता है।

सन्दर्भ

४८ - अथर्व. १५/९/२, १२/१/५६, यजु. ३/४५.
तं सभाचसमितिश्चसेना च ॥

४९- वही - ७/१२/१ क्षमा च सा समितिश्चावतांप्रजापतेर्दुहितरो संविदाने ॥

५० - वही. ६/८८/३, ५/९/१५ तथा ऋग्वे. १०/१७३ सूक्त.

५१ -ध्रुवोऽच्युत: प्रमृणीहि शत्रूम् छत्रू यतोऽघरान् पादयास्व।
सर्वा दिश: संमनस: सघ्रीचीर्ध्रुवायते समिति: कपतामिह।
अथर्व. ७/८८/३ तथा ऋग्वेद. १०/१७३ सूक्त

५२ - ऋग्वे. १०/१९७/६ (.... समग्रता: राजान: समिताविव)

५३ - राजा न सत्य: समितीरियान: ऋग्वे. ९/९२/६

५४ - ऋग्वे. १०/१६६/४ (अहं समिति ददे)

५५ - समानो मंत्र: समिति, समानी
समानं मन: स: चित्तमेषाम्।
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति ॥
ऋग्वे. १०/१९१/९-४

५६ - छन्दो. ५/३

५७ - सम्य समा मे पाहित ये च सम्या: सभासद: ॥
अथर्व. १९/५५/५

५८ - वाजसनेयि सं. १६/१४

५९ - तैत्तिरीय. ३/७/४/६

६० - ऋग्वे. ४/२/५ 'रयि: समावान्'

६१ - विद्यते ते समे नाम नरिष्टां नाम वा असि अथर्व. ७/१२/२

६२ - सभेयो युवा। यजु. २२/२२

६३ - छान्दो. उप. ५/३/६

६४ - वही ८/१४/१

६५ - शह. ब्रा. ६/३/५/१४

६६ - या: सभा अधिभूम्याम् .... समितय. तेषु चारु वेदेम ते।
अथर्व. १२/१/५६

६७ - चारु वदामि संगतेषु ॥ अथर्व. ७/१२/१

६८ - मयि वो रमतां मन: ॥ अथर्व ७/१२/४
अभिभूरहमागमं विश्व कर्मेण धाम्ना
आ वाश्चित्तमा वो व्रत मा वोऽहं समिति ददे ॥ ऋग्वे.
१०/१६६/४

६९ - ये ते के च सभासदास्ते मे सन्तु सवाचस :। अथर्व.
७/१२/२

७० - सभायां यदेनश्चकृमा वयम् ॥ यजु. ३/४५

७१ - ऋग्वे. १/२४/१३-१५

७२ - वा. मृ. सूत्र ३/१३, नदन शीला दीप्ता धर्मनिरुपणात्

७३ - यजु. ३०/६, ऐ.ब्रा. ८/२१/१४, अथर्व. ३/२९/१, ७/१२/२, १९/५५/६

७४ - किल्विषस्पृत् (अपराध संस्पृष्ट) पितुषणि:
(अपराधमुक्त-ऋ. १०/७१/१०)

७५ - ऋ. १०/९७/२

७६ - तैत्ति. सं. २/३/१/३

७७ - मेन्नायणी सं. २/२/१

७८- ऋ. ७/३८/६

७९ - वही. १०/९७/११

८० - शत. ब्रा. काण्ड १३

८१ - अथर्व ३/५/७, ऐ.ब्रा. ८/१७/५, शत.ब्रा. ३/४/१७, १३/२/२/१८

८२ - इमं जना: अभ्युल्क्रोशत सम्राजं साम्राज्यं, भोजं भोजपितरं, स्वराजंते स्वाराज्यं, विराजं, वैराज्यं, परमेष्ठियं, राजानं राजपितरं क्षत्रमजनि क्षत्रयोऽजनि, विश्वस्याभूतस्याधिपतिरजनि, विशायन्ता जनि, अमित्राणां हन्ताजनि ब्राह्मणानां गोप्ताजनि इति
॥ ऐ.ब्रा. ८/१७

८३ - अथर्व. १/९/३-४, ३/४/३ आदि ; यै.सं. २/६/५, तैनि.सं. शत.ब्रा. ३/५/१/१, ५/४/४/१५-१९, ५/३/१ सूक्त पंचविश ब्रा. १९/१/४

८४ - ऋग्वे.१/१/१

८५ - वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता : ॥

८६ - ऋग्वे. ७/६२/१२, ७/८३/४

(क्रमश:)

डॉ.एस.जे.दिवाकर
सरस्वती सदन, इन्दिरा कालोनी (जे.ए.मार्शल)
माला रोड, कोटा नं. ३२४००२ (राज.)

देश की वर्तमान विघटनात्मक परिस्थिति में वैदिक आदर्शों की उपयोगिता

(गतांक से आगे)

चतुर्वर्ण -

वैदिक राजतंत्र में राज्याभिषेक के समय चारों वर्णो के लोग उपस्थित रहते थे और सबके मध्य पुरोहित यह घोषित करता था कि सब प्रजा का राजा यह व्यक्ति है किन्तु ह्मणों का राजा सोम है। अभिप्राय यह है वैदिकराजतंत्र में धर्म को ही सच्चा अधिपति माना गया है।८७ चूंकि धर्म का प्रतिनिधि ब्राह्मण है इसलिए ब्राह्मण छत्र से ऊपर है। यही कारण है कि ब्राह्मण की गणना प्रथम होती थी।८८ इतना ही नही वेद का अध्ययन अध्यापन करने से ब्राह्मण और भी ऊंचे थे, देवतुल्य थे।८९ ब्राह्मण सदा विश्व हित में लगा रहता था। इसलिए यह कहा गया है कि ब्राह्मण के अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है। ९० क्षत्रिय प्रजा को धर्मपथ पर लाता था और ब्राह्मण उसे धर्ममय बनाता था। क्षत्र-ब्रह्म दोनो ही प्रजा में धर्म को धारण करते थे। अत: दोनों मे पूर्ण सौमनस्य होना आवश्यक था। दोनो की परस्पर प्रतिष्ठा होती थी ९१ क्योंकि बुद्धि और क्रिया का परस्पर सामंजस्य हुए बिना कोई कार्य ठीक नहीं हो सकता। राष्ट्र उन्नति पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता, अत: ब्राह्मण और क्षत्रिय को मिलकर देश हित में लगे रहना चाहिए।९२

ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनो ही नहीं वैश्य और शूद्र भी राष्ट्र के साथ सौमनस्य रखें, चारों वर्णो में परस्पर सौहार्द्र हो। वे एक मन से तथा मिलजुलकर काम करें। ९३ राष्ट्र रक्षा में निरत सभी वर्णो को तेजस्वी होना चाहिए। ९४ सभी अपने-अपने कर्म में निरत रहें किन्तु संकटकाल में धर्म का अवरोध होने पर द्विजाति शस्त्र ग्रहण करें और शूद्र द्विजाति का हित साधन करता हुआ विविध शिष्यों की उन्नति करता रहे। ९५ यह स्मृति प्रतिपादन वेदों के आधार पर ही है। मनुस्मृति का कथन है कि वर्ण-निर्दिष्ट कर्तव्यों की अवहेलना करने पर राष्ट्र राष्ट्रिकों के सहित नष्ट हो जाता है। ९६ आज स्थिति यह है कि सभी वर्ण अपने कर्तव्य से च्युत हो गये हैं जिसके कालस्वरुप देश इस विघटनकारी स्थिति में पहुंच गया है। अत: सभी को अपने विनिर्दिष्ट कर्तव्य में लगे रहकर सबके प्रति मित्रभाव रखना चाहिए ९७ और सब प्रकार से समस्त मानवजाति की रक्षा में दत्तचित रहना चाहिए। ९८ यही संगठन और शक्ति का मूल मंत्र है।

परिवार-

राष्ट्र में सहृदयता के विस्तार करने का प्रथम सोपान परिवार ही है। व्यक्ति सर्व प्रथम परिवार में ही आत्मविस्तार करता है। यहीं वह अपने क्षुद्र स्वार्थ से उपर उठकर आगे बढ़ता है और परहित साधन में लगना सीखता है। अथर्व वेद के सौमनस्य सूक्त ९९ में परिवारिक सौहार्द्र, सौमनस्य अविद्वेष, त्याग, अनुव्रत और सव्रत भद्रता रखने का व्रत निर्दिष्ट किया गया है।

व्यष्टिधर्म-

व्यष्टिगत राष्ट्रधर्म का भी वेद और वैदिक वाङ्मय में निरुपण हुआ है।यह भी कहा गया है कि मनुष्य का शरीर चट्टान जैसा सुदृढ हो १०० और वह तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु तथा सह से भरपूर हो।१०१ अनौचित्य को देखकर होने वाला क्रोध 'मन्यु है। विरोधी पर विजय पाने में समर्थ शक्ति का नाम 'सह' है। यह भी उल्लेख है कि परिश्रमशील हुए बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता देव भी सहायता नहीं करते।१०२ अत: उन्नतिशील जीवन की प्राप्ति के लिए उद्यमी होना चाहिए। १०३

आज भारतीय जनमानस पर पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा और विचारधारा का इतना दूषित प्रभाव पड़ चुका है कि वह अभिष्ट सा दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण हमें अपना सब कुछ बुरा और हेय लगता है और पराया सब कुछ अच्छा और श्रेय। यही कारण है कि देश विघटनकारी तत्वों से जकड़ा हुआ है। सर्वत्र अनाचार, अत्याचार, झूठ, दम्भ, विश्वासघात, भ्रष्टाचार, बलात्कार का साम्राज्य छाया हुआ है, ऐसी स्थिति में वेद तथा वैदिक कालीन आदर्शों का अनुसरण किया जाए तो अर्थ और अधिकार की लिप्सा और भ्रष्टाचार का अन्त हो सकता है। शासक और शासित परहितरता होकर राष्ट्र के उन्नायक बनें तो वास्तविक राम राज्य के दर्शन कर सकते हैं। अत: वर्तमान भारत की श्री वृद्धि श्रेय प्रेय सम्पादन और दुर्धर्षिता. प्राप्ति के लिए यह परम आवश्यक है कि वैदिक वाङ्:मय में उल्लिखित आदर्शों का पालन कियाजाए।

संदर्भ -

८७ - एष वो विशो राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ॥
शत. ब्रा. ५/३/३/१२, ५/४/२/३.

८८- ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् ॥ पुरूषसूक्त

८९- अथ ये ब्राह्मणा. शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्य देवा: ॥
श.ब्रा. २/२/२/६

९० -उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति।
परावत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥
अथर्व .५/१९/६, १/१७,१८,१९ सूक्त

९१ - ब्रह्म च क्षत्रं च संश्रिते ॥ऐ.ब्रा.॥ ३/११
ब्रह्मणि खलु वै क्षत्रं प्रतिष्ठितम्। क्षत्रे ब्रह्म ॥ ऐ.ब्रा. ८/२

९२- ऊँ यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरत: सह।
तं देशं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा: सहाग्निना ॥ यजु.२०/२५

९३- संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनासि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ ऋ.१०/१९१/२

९४ - रूचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रूचं राजसु नस्कृधि।
रूचं विश्येषु, शूद्रेषु, मयि धेहि रूचा रूचम् ॥
यजु.१८/४८

९५ -(क) शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोरुध्यते ॥
(ख) शिल्पैर्वा विविधेजीवेद् द्विजातिहितमाचरन् -
याज्ञवल्क्यस्मृति

९६- स्मिन्नेते परिध्वंसा जान्यवे वर्णदूषका:।
राष्ट्रिकै: सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति -मनुस्मृति १०/११

९७ - मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ यजु.३६/१८

९८ - पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वत:॥ ऋ .६/७५/१४

९९ - अथर्व ३/३०/१-३

१०० - अश्मा भवतु नस्तनू:। यजु. २९/४९

१०१ - तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ॥
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽसि ओजो मयि धेहि ॥
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥
यजु.१९/९

१०२ - नत्रृते श्रान्तस्य सख्याय देवा:। ऋ.४/३३/११

१०३ - कृधी न ऊर्ध्वञ्चस्थाय जीवसे ॥ ऐ.ब्रा.२/२

डॉ.एस.जे.दिवाकर
सरस्वती सदन
इन्दिरा कालोनी (जे.ए.मार्शल)
माला रोड, कोटा नं. ३२४००२ (राज.)